

Chapter एक

ब्रह्माण्ड के प्रशासक मनु

सर्वप्रथम मैं अपने गुरुदेव कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के चरणकमलों में विनम्र सादर नमस्कार करता हूँ। १९३५ में जब वे राधाकुण्ड में रुके हुए थे तो मैं बम्बई से उनके दर्शन करने गया था। उस समय उन्होंने मन्दिर बनवाने तथा पुस्तकें प्रकाशित करने के सम्बन्ध में मुझे अनेक महत्त्वपूर्ण आदेश दिये थे। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि पुस्तकें प्रकाशित करना मन्दिरों के बनवाने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह, वे आदेश मेरे मन में अनेक वर्षों तक बने रहे। मैंने १९४४ में अपनी *बैंक टु गॉडहेड* पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और १९५८ में जब मैं अपने पारिवारिक जीवन से विरक्त हो गया तो मैंने दिल्ली में *श्रीमद्भागवत* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जब भारत में *श्रीमद्भागवत* के तीन खण्ड छप चुके थे तो मैं १३ अगस्त १९६५ को संयुक्त राज्य अमरीका के लिए रवाना हो गया।

अपने गुरु के सुझाव के अनुसार मैं पुस्तकों के प्रकाशन का निरंतर प्रयत्न कर रहा हूँ। अब इस वर्ष १९७६ में मैंने *श्रीमद्भागवत* का सप्तम स्कन्ध पूरा किया है और दशम स्कन्ध का सारांश *लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण* के नाम से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। अभी भी अष्टम, नवम, दशम, एकादश तथा द्वादश स्कन्धों का प्रकाशन शेष है। अतएव इस अवसर पर मैं अपने गुरु से प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे इस कार्य को पूरा करने के लिए मुझे शक्ति प्रदान करें। मैं न तो कोई महान् विद्वान हूँ और न ही महान् भक्त, मैं तो अपने गुरु का केवल एक विनीत दास हूँ और अमरीका के अपने शिष्यों के सहयोग से इन पुस्तकों को प्रकाशित करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। सौभाग्य से विश्वभर के विद्वान इन ग्रंथों की प्रशंसा कर रहे हैं। आओ, हम मिल-जुलकर कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर को प्रसन्न करने के लिए *श्रीमद्भागवत* के अधिकाधिक खण्डों का प्रकाशन करें।

आठवें स्कन्ध के इस पहले अध्याय में चारों मनुओं—स्वायंभुव, स्वरोचिष, उत्तम तथा तामस—का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। सप्तम स्कन्ध के अन्त तक स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन सुनकर महाराज

परीक्षित ने अन्य मनुओं के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। वे यह भी जानना चाह रहे थे कि भगवान् किस प्रकार न केवल भूतकाल में, अपितु वर्तमान काल तथा भविष्यत् काल में भी अवतरित होते हैं और किस तरह वे विभिन्न लीलाओं में मनु की भूमिका निभाते हैं। चूँकि परीक्षित महाराज यह सब जानने को उत्सुक थे अतएव शुकदेव गोस्वामी ने भूतकाल में प्रकट हुए छह मनुओं से आरम्भ करके क्रमशः सभी मनुओं का वर्णन किया।

प्रथम मनु स्वायंभुव मनु थे। उनके दो पुत्रियाँ थीं—आकूति तथा देवहूति जिनसे क्रमशः यज्ञ तथा कपिल नामक दो पुत्र हुए। चूँकि शुकदेव गोस्वामी तृतीय स्कन्ध में कपिल के कार्यकलापों का वर्णन कर चुके थे अतएव उन्होंने अब यज्ञ के कार्यकलापों का वर्णन किया। आदि मनु अपनी पत्नी शतरूपा सहित सुनन्दा नामक नदी के तट पर तपस्या करने के लिए जंगल चले गये, उन्होंने वहाँ एक सौ वर्षों तक तपस्या की। तभी मनु ने समाधि में ही भगवान् की स्तुतियाँ तैयार कीं। तब राक्षसों तथा असुरों ने उन्हें निगल जाने का प्रयास किया, किन्तु यज्ञ ने अपने पुत्रों, यामों तथा देवताओं की सहायता से उन्हें मार डाला। तब यज्ञ ने स्वर्गलोकों के राजा इन्द्र का पद स्वयं ग्रहण कर लिया।

दूसरे मनु का नाम स्वरोचिष था और वे अग्नि के पुत्र थे। उनके पुत्रों में द्युमत, सुषेण तथा रोचिष्मत मुख्य थे। इस मनु के युग में रोचन स्वर्गलोकों का राजा इन्द्र बना और तुषित इत्यादि अनेक देवता हुए। अनेक साधुपुरुष भी हुए—यथा ऊर्ज तथा स्तम्भ। उन्हीं में वेदशिरा था जिसकी पत्नी तुषिता ने विभु को जन्म दिया। विभु ने अट्ठासी हजार *दृढव्रतों* अर्थात् साधुपुरुषों को आत्मसंयम तथा तपस्या का उपदेश दिया।

तृतीय मनु, प्रियव्रत का पुत्र उत्तम था। उसके पुत्रों में पवन, सृञ्जय तथा यज्ञहोत्र इत्यादि थे। इस मनु के राज्यकाल में वसिष्ठ के पुत्रों में प्रमद इत्यादि सप्तर्षि हुए। सत्य, देवश्रुत तथा भद्रगण देवता बने और सत्यजित इन्द्र बना। धर्म की पत्नी सुनृता के गर्भ से सत्यसेन के रूप में भगवान् उत्पन्न हुए जिन्होंने सत्यजित से युद्ध करने वाले यक्षों तथा राक्षसों का वध किया।

तृतीय मनु का भाई तामस चतुर्थ मनु बना। उसके दस पुत्र हुए जिनमें पृथु, ख्याति, नर तथा केतु प्रमुख थे। उसके राज्यकाल में सत्यकगण, हरिगण, वीरगण तथा अन्य देवता हुए। सप्तर्षियों में ज्योतिर्धाम मुख्य था और त्रिशिख इन्द्र बना। हरिमेधा के ही अपनी पत्नी हरिणी के गर्भ से हरि नामक

पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् के इन्हीं अवतार हरि ने अपने भक्त गजेन्द्र को बचाया। यह घटना गजेन्द्र मोक्षण के नाम से वर्णित है। इस अध्याय के अन्त में परीक्षित महाराज इसी घटना के विषय में विशेष जिज्ञासा करते हैं।

श्रीराजोवाच

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।

यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (महाराज परीक्षित) ने कहा; स्वायम्भुवस्य—महापुरुष स्वायंभुव मनु का; इह—इस सम्बन्ध में; गुरो—हे गुरु; वंशः—वंश; अयम्—यह; विस्तरात्—विस्तर से; श्रुतः—मैंने (आपसे) सुना; यत्र—जिसमें; विश्व-सृजाम्—प्रजापति नामक महापुरुषों का, यथा मरीचि इत्यादि का; सर्गः—सृष्टि, जिसमें मनु की पुत्रियों से अनेक पुत्र तथा पौत्र उत्पन्न हुए; मनून्—मनुओं को; अन्यान्—अन्य; वदस्व—कृपया वर्णन करें; नः—हम से।

राजा परीक्षित ने कहा : हे स्वामी! हे गुरु! अभी मैंने आपके मुख से स्वायंभुव मनु के वंश के विषय में भलीभाँति सुना। किन्तु अन्य मनु भी तो हैं; अतएव मैं उनके वंशों के विषय में सुनना चाहता हूँ। कृपा करके उनका वर्णन करें।

मन्वन्तरे हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।

गृणन्ति कवयो ब्रह्मांस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

मन्वन्तरे—मन्वन्तरो के परिवर्तन के समय (एक मनु से दूसरा मनु बनने का अन्तराल); हरेः—भगवान् का; जन्म—प्राकट्य; कर्माणि—तथा कर्म; च—भी; महीयसः—अत्यन्त यशस्वी का; गृणन्ति—वर्णन करते हैं; कवयः—विद्वान् पुरुष जिन्हें पूर्ण बुद्धि है; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); तानि—उन सबों को; नः—हमसे; वद—कहिये; शृण्वताम्—सुनने के इच्छुक।

हे विद्वान् ब्राह्मण शुकदेव गोस्वामी! बड़े-बड़े विद्वान् पुरुष, जो नितान्त बुद्धिमान् हैं, विभिन्न मन्वन्तरो में भगवान् के कार्यकलापों का तथा उनके प्राकट्य का वर्णन करते हैं। हम इन वर्णनों को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। कृपया उनका वर्णन करें।

तात्पर्य : भगवान् के अनेक प्रकार के अवतार होते हैं जिनके अन्तर्गत गुण-अवतार, मन्वन्तर अवतार, लीला अवतार तथा युग अवतार आते हैं और इन सबका वर्णन शास्त्रों में हुआ है। शास्त्रों के सन्दर्भ के बिना किसी को भी भगवान् का अवतार स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव जैसाकि यहाँ पर विशेष उल्लेख है—गृणन्ति कवयः—पूर्ण बुद्धिमान् एवं बड़े-बड़े विद्वान् व्यक्ति विभिन्न अवतारों के विवरणों को स्वीकार करते हैं। इस समय, विशेष रूप से भारत में अनेक धूर्त

अपने को अवतार होने का दावा करते हैं और लोगों को गुमराह करते हैं। अतएव अवतार की पहचान की पुष्टि शास्त्रों के विवरणों तथा उनके विलक्षण कार्यकलापों से की जानी चाहिए। जैसाकि इस श्लोक के *महीयसः* शब्द से लक्षित है, अवतार के कार्यकलाप कोई साधारण जादू या बाजीगरी नहीं होते, अपितु विलक्षण होते हैं। अतः भगवान् के किसी भी अवतार की पुष्टि शास्त्रों के विवरणों द्वारा की जानी चाहिए और उनके कार्यकलाप यथार्थ विलक्षण होने चाहिए। परीक्षित महाराज विभिन्न युगों के मनुओं के विषय में सुनने को उत्सुक थे। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं और प्रत्येक मनु इकहत्तर युगों तक जीवित रहता है। इस प्रकार ब्रह्मा के जीवनकाल में हजारों मनु होते हैं।

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ।

कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी कार्यकलाप; यस्मिन्—किसी विशेष युग में; अन्तरे—मन्वन्तर में; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भगवान्—भगवान्; विश्व-भावनः—इस दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाला; कृतवान्—किया गया; कुरुते—कर रहा है; कर्ता—तथा करेगा; हि—निस्सन्देह; अतीते—भूतकाल में; अनागते—भविष्य में; अद्य—वर्तमान में; वा—अथवा ।

हे विद्वान् ब्राह्मण! कृपा करके इस दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाले भगवान् के उन सारे कार्यकलापों का वर्णन हमसे करें जिन्हें उन्होंने विगत मन्वन्तरों में सम्पन्न किया, जो वे वर्तमान में सम्पन्न कर रहे हैं तथा जो वे भावी मन्वन्तरों में सम्पन्न करेंगे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् ने कहा है कि युद्धभूमि में उपस्थित स्वयं वे तथा अन्य सारे जीव भूतकाल में विद्यमान थे, वे इस समय उपस्थित हैं और भविष्य में भी स्थित रहेंगे। भूत, वर्तमान तथा भविष्य भगवान् तथा सामान्य जीवों के लिए सदैव रहते हैं। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*। भगवान् तथा जीव दोनों ही शाश्वत तथा सचेतन हैं, किन्तु इनमें अन्तर यह है कि भगवान् असीम हैं जबकि जीव सीमित हैं। भगवान् प्रत्येक वस्तु के स्रष्टा हैं और यद्यपि जीव उत्पन्न नहीं किये जाते, अपितु वे भगवान् के साथ नित्य रहते आये हैं, किन्तु उनके शरीर उत्पन्न होते हैं जबकि भगवान् का शरीर उत्पन्न नहीं होता। भगवान् तथा उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन बद्धजीव, शाश्वत होते हुए भी, अपने शरीर से भिन्न होता है।

श्रीऋषिरुवाच

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट्कल्पे स्वायम्भुवादयः ।
आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—महान् ऋषिः शुकदेव गोस्वामी ने कहा; मनवः—मनु; अस्मिन्—इस अवधि (ब्रह्मा के एक दिन) में; व्यतीताः—बीता हुआ; षट्—छः; कल्पे—ब्रह्मा के एक दिन में; स्वायम्भुव—स्वायंभुव मनु; आदयः—इत्यादि; आद्यः—प्रथम (स्वायंभुव); ते—तुमसे; कथितः—पहले कहा जा चुका; यत्र—जिसमें; देव-आदीनाम्—समस्त देवताओं का; च—भी; सम्भवः—प्राकट्य, जन्म ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वर्तमान कल्प में छह मनु हो चुके हैं। मैं तुमसे स्वायंभुव मनु तथा अनेक देवताओं के प्राकट्य के विषय में वर्णन कर चुका हूँ। ब्रह्मा के इस कल्प में स्वायंभुव प्रथम मनु हैं।

आकृत्यां देवहृत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ।
धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आकृत्याम्—आकृति के गर्भ से; देवहृत्याम् च—तथा देवहृति के गर्भ से; दुहित्रोः—दोनों पुत्रियों के; तस्य—उसकी; वै—निस्सन्देह; मनोः—स्वायंभुव मनु की; धर्म—धर्म; ज्ञान—तथा ज्ञान; उपदेश-अर्थम्—उपदेश देने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; पुत्रताम्—आकृति तथा देवहृति का पुत्रत्व; गतः—स्वीकार किया ।

स्वायंभुव मनु के दो पुत्रियाँ थीं—आकृति तथा देवहृति। उनके गर्भ से भगवान् दो पुत्रों के रूप में प्रकट हुए जिनके नाम क्रमशः यज्ञमूर्ति तथा कपिल थे। इन पुत्रों को धर्म तथा ज्ञान का उपदेश देने का कार्यभार सौंपा गया।

तात्पर्य : देवहृति के पुत्र का नाम कपिल था और आकृति के पुत्र का नाम यज्ञमूर्ति। दोनों ने ही धर्म तथा दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा दी।

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरुद्वह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

कृतम्—पहले ही किया गया; पुरा—पहले; भगवतः—भगवान्; कपिलस्य—देवहृति के पुत्र कपिल का; अनुवर्णितम्—पूर्णतया वर्णन हो चुका है; आख्यास्ये—अब मैं वर्णन करूँगा; भगवान्—भगवान्; यज्ञः—यज्ञपति या यज्ञमूर्ति का; यत्—जो; चकार—सम्पन्न किया; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ ।

हे कुरुश्रेष्ठ! मैं पहले ही (तृतीय स्कन्ध में) देवहृति के पुत्र कपिल के कार्यकलापों का वर्णन कर चुका हूँ। अब मैं आकृति के पुत्र यज्ञपति के कार्यकलापों का वर्णन करूँगा।

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

विरक्तः—अनासक्त; काम-भोगेषु—इन्द्रियतृप्ति में (गृहस्थ जीवन में); शतरूपा-पतिः—शतरूपा के पति, स्वायंभुव मनु;
प्रभुः—जो विश्व के स्वामी या राजा थे; विसृज्य—पूर्णतः त्यागकर; राज्यम्—अपने राज्य को; तपसे—तपस्या करने के लिए;
स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; वनम्—जंगल में; आविशत्—प्रवेश किया ।

शतरूपा के पति स्वायंभुव मनु स्वभाव से इन्द्रियभोग के प्रति तनिक भी आसक्त नहीं थे ।
अतएव उन्होंने अपने विलासमय राज्य को त्याग दिया और अपनी पत्नी सहित तपस्या करने के लिए जंगल में चले गये ।

तात्पर्य : जैसा कि भगवद्गीता (४.२) में कहा गया है— एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः—
यह परम विज्ञान शिष्य-परम्परा द्वारा प्राप्त हुआ और राजर्षियों ने उसे इसी तरह से समझा । सारे मनु परिपूर्ण राजा थे—वे राजर्षि थे । दूसरे शब्दों में, यद्यपि वे विश्व के सम्राट् थे, किन्तु वे महान् सन्तों के समान ही थे । उदाहरण के लिए, स्वायंभुव मनु विश्व के सम्राट् थे, किन्तु उन्हें इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा न थी । राजतंत्र का यही अर्थ है । देश के राजा या साम्राज्य के सम्राट् को इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वह सहज ही इन्द्रियतृप्ति त्याग दे । ऐसा नहीं है कि क्योंकि वह राजा है, अतः वह इन्द्रियतृप्ति पर व्यर्थ ही धन खर्च करे । ज्योंही राजा इन्द्रियतृप्ति पर धन खर्च करके पतित हो गए त्योंही वे विनष्ट हो गए । इसी तरह इस समय राजतंत्र समाप्त हो चुका है और लोगों ने प्रजातंत्र स्थापित किया है, किन्तु वह भी असफल हो रहा है । अब प्रकृति के नियमानुसार वह समय आने वाला है जब तानाशाही से प्रजा को अधिकाधिक कष्ट भोगना पड़ेगा । यदि राजा या तानाशाह अकेले या सरकार के सदस्य संयुक्त रूप से राज्य या साम्राज्य को *मनुसंहिता* के नियमों के अनुसार चला नहीं पाते तो निश्चित रूप से उनकी सरकार नहीं चलेगी ।

सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ।
तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सुनन्दायाम्—सुनन्दा नदी के तट पर; वर्ष-शतम्—एक सौ वर्षों तक; पद-एकेन—एक पाँव पर; भुवम्—पृथ्वी को; स्पृशन्—छुए हुए; तप्यमानः—तपस्या की; तपः—तपस्या; घोरम्—अत्यन्त कठिन; इदम्—निम्नलिखित, यह; अन्वाह—कहा; भारत—हे भरतवंशी ।

हे भरतवंशी! स्वायंभुव मनु अपनी पत्नी समेत जंगल में प्रविष्ट होने के बाद सुनन्दा नदी के

तट पर एक पाँव पर खड़े रहे। इस प्रकार केवल एक पाँव से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए उन्होंने एक सौ वर्षों तक महान् तपस्या की। तपस्या करते समय वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टीका की है कि *अन्वाह* शब्द का अर्थ है कि वे जप कर रहे थे या फुसफुसा रहे थे, किसी को भाषण नहीं दे रहे थे।

श्रीमनुरुवाच

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।

यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-मनु: उवाच—स्वायंभुव मनु ने उच्चारण किया; येन—जिससे (भगवान् से); चेतयते—चेतन हो जाता है; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड (भौतिक जगत); चेतयते—चेतन होता है; न—नहीं; यम्—जिसको; यः—वह जो; जागर्ति—सदैव जागता रहता है (सारे कार्यकलापों का साक्षी बना हुआ); शयाने—सोते समय; अस्मिन्—इस शरीर में; न—नहीं; अयम्—यह जीव; तम्—उसको; वेद—जानता है; वेद—जानता है; सः—वह ।

श्री-मनु ने कहा : परम पुरुष ने इस चेतन भौतिक जगत की सृष्टि की है; ऐसा नहीं है कि इस भौतिक जगत से उसकी उत्पत्ति हुई हो। जब सब कुछ मौन रहता है, तो परम पुरुष साक्षी रूप में जगा रहता है। जीव उसे नहीं जानता, किन्तु वह सब कुछ जानता है।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् और जीवों का अन्तर दिया गया है। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*। वेदों के अनुसार भगवान् परम नित्य जीव हैं। परम पुरुष तथा सामान्य जीव में यही अन्तर है कि जब इस भौतिक विश्व का संहार होता है, तो सारे जीव विस्मृति में, स्वप्न में या अचेतन अवस्था में मौन रहते हैं। किन्तु परम पुरुष प्रत्येक वस्तु के साक्षी बनकर जागते रहते हैं। इस भौतिक जगत का सृजन होता है, कुछ काल तक यह बना रहता है और फिर नष्ट हो जाता है। किन्तु इन सारे परिवर्तनों के दौरान परम पुरुष जगे रहते हैं। सभी जीवों की भौतिक दशा में स्वप्न की तीन अवस्थाएँ होती हैं। जब भौतिक जगत जाग्रत रहता है और कार्यशील होता है, तो यह एक प्रकार का स्वप्न है, जाग्रत स्वप्न। जब जीव सो जाते हैं, तो वे फिर स्वप्न देखते हैं। और जब प्रलय के समय वे अचेतनावस्था में होते हैं और यह जगत अप्रकट रहता है, तो सारे जीव एक अन्य स्वप्नावस्था में प्रवेश करते हैं। अतएव वे इस भौतिक जगत में किसी भी अवस्था में स्वप्न देखते रहते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जगत में हर वस्तु जाग्रत होती है।

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आत्म—परमात्मा; आवास्यम्—सर्वत्र रहते हुए; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड, सारे स्थान; यत्—जो भी; किञ्चित्—प्रत्येक विद्यमान वस्तु; जगत्याम्—संसार में, सर्वत्र; जगत्—हर वस्तु, चर तथा अचर; तेन—उसके द्वारा; त्यक्तेन—नियत; भुञ्जीथा:—भोग कर सकते हो; मा—मत; गृधः—स्वीकार करो; कस्य स्वित्—किसी अन्य का; धनम्—धन।

इस ब्रह्माण्ड में भगवान् परमात्मा रूप में सर्वत्र, जहाँ कहीं भी चर तथा अचर प्राणी हैं, विद्यमान हैं। अतएव मनुष्य उतना ही स्वीकार करे जितना उसके लिए नियत है; उसे पराये धन में हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

तात्पर्य : स्वायंभुव मनु भगवान् की दिव्य स्थिति बतलाकर अपने पुत्रों तथा पौत्रों को अब उपदेश दे रहे हैं कि ब्रह्माण्ड की सारी सम्पत्ति भगवान् की है। मनु का यह उपदेश न केवल अपने पुत्रों-पौत्रों के लिए है, अपितु सारे मानव समाज के लिए है। मनुष्य शब्द मनु से व्युत्पन्न हैं क्योंकि मानव समाज के सारे सदस्य इत्यादि मनु के वंशज हैं। भगवद्गीता (४.१) में भी मनु का उल्लेख है जहाँ भगवान् कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम् ॥

विवस्वान् मनवे प्राह मनुर्इक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

“मैंने इस अविनाशी योग विज्ञान की शिक्षा सूर्यदेव विवस्वान् को दी और विवस्वान् ने इसे मानव के पिता मनु को बतलाया; फिर मनु ने आगे इसे इक्ष्वाकु को बतलाया।” स्वायंभुव मनु तथा वैवस्वत मनु का उत्तरदायित्व एक जैसा है। वैवस्वत मनु सूर्यदेव विवस्वान् से उत्पन्न हुए जिनका पुत्र इक्ष्वाकु पृथ्वी का राजा हुआ। चूँकि मनु मानवता के इत्यादि पिता समझे जाते हैं अतएव मानव समाज को चाहिए कि उनके उपदेशों का पालन करे।

स्वायंभुव मनु उपदेश देते हैं कि जो कुछ भी आध्यात्मिक जगत तथा इस भौतिक जगत में विद्यमान है, वह उन भगवान् की सम्पत्ति है, जो सर्वत्र परम चेतना के रूप में उपस्थित हैं। जैसी कि भगवद्गीता (१३.३) में पुष्टि हुई है, क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत—प्रत्येक क्षेत्र में, अर्थात् प्रत्येक शरीर में परमेश्वर परमात्मा के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक आत्मा को एक शरीर प्रदान किया जाता है, जिसमें वह रहे और परम पुरुष के आदेशानुसार कर्म करे। अतएव परमात्मा भी प्रत्येक शरीर में उपस्थित रहता है। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम स्वतंत्र हैं, प्रत्युत हमें यह समझना चाहिए

कि हमें भगवान् की कुल सम्पत्ति का एक अंश मिला है।

ऐसे ज्ञान से पूर्ण साम्यवाद आ जाएगा। साम्यवादी अपने-अपने राष्ट्रों को लेकर सोचते हैं, किन्तु यहाँ पर जिस आध्यात्मिक साम्यवाद का उपदेश दिया गया है, वह राष्ट्रव्यापी नहीं, अपितु विश्वजनीन है। किसी राष्ट्र या किसी व्यक्ति का अपना कुछ नहीं होता; प्रत्येक वस्तु भगवान् की है। इस श्लोक का यही अर्थ है। *आत्मावास्यम् इदं विश्वम्*—इस विश्व में जो कुछ भी है, वह भगवान् की सम्पत्ति है। आधुनिक साम्यवादी सिद्धान्त तथा संयुक्त राष्ट्र के विचार में सुधार लाया जा सकता है यदि हर वस्तु भगवान् की मानी जाये। भगवान् हमारी बुद्धि की उपज नहीं हैं प्रत्युत भगवान् ने हमें उत्पन्न किया है। *आत्मावास्यम् इदं विश्वम्। ईशावास्यमिदं सर्वम्।* यह वैश्व साम्यवाद जगत की सारी समस्याएँ हल कर सकता है।

मनुष्य को वैदिक वाङ्मय से यह सीखना चाहिए कि मनुष्य का शरीर भी उसकी सम्पत्ति नहीं है—यह तो उसे उसके कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है। *कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।* चौरासी लाख योनियों के विभिन्न शरीर यंत्र हैं, जो प्रत्येक जीव को मिले हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१८.६१) में की गई है—

ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

“हे अर्जुन! भगवान् सबों के हृदय में स्थित हैं और सारे जीवों की गतिविधियों का निर्देश कर रहे हैं, जो भौतिक शक्ति से बने यंत्रों पर आरूढ़ जैसे हैं।” भगवान् परमात्मा रूप में हर एक के हृदय में स्थित रहते हैं और प्रत्येक जीव की इच्छाओं का अवलोकन करते रहते हैं। वे इतने दयालु हैं कि जीव को उपयुक्त शरीरों में नाना प्रकार की इच्छाओं का भोग करने का अवसर प्रदान करते हैं। ये शरीर मात्र मशीन (यन्त्र) जैसे हैं (यन्त्रारूढानि मायया)। ये यंत्र बहिरंगा शक्ति के भौतिक अवयवों से बनाये जाते हैं और इस प्रकार जीव अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार सुख या दुख भोगते हैं। यह अवसर परमात्मा द्वारा प्रदत्त है।

चूँकि हर वस्तु परमेश्वर की है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण न करे। हममें अनेक वस्तुओं को बनाने की प्रवृत्ति है। विशेष रूप से आजकल हम गगनचुम्बी प्रासादों

को बना रहे हैं और अन्य भौतिक सुविधाओं का विकास कर रहे हैं। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि गगनचुम्बी प्रासादों तथा यंत्रों को बनाने में जिन अवयवों की आवश्यकता होती है उन्हें भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं बना सकता। सारा जगत पंच तत्त्वों के मेल के अतिरिक्त कुछ नहीं है (*तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः*)। गगनचुम्बी प्रासाद मिट्टी, जल तथा अग्नि का ही रूपान्तर है। मिट्टी तथा जल को मिलाकर अग्नि में पकाकर ईंटें बनाते हैं और इन्हीं ईंटों से गगनचुम्बी प्रासाद की ऊँची रचना होती है। यद्यपि ईंटें मनुष्य द्वारा निर्मित हैं, किन्तु उनके अवयव उसके द्वारा निर्मित नहीं होते। निस्सन्देह, निर्माता के रूप में मनुष्य भगवान् से वेतन प्राप्त कर सकता है। यही यहाँ पर कहा गया है— *तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*—मनुष्य विशाल गगनचुम्बी प्रासाद तो बना सकता है, किन्तु निर्माता, व्यापारी या मजदूर कोई भी इसके स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता। स्वामित्व तो उस व्यक्ति का होता है, जिसने इस प्रासाद के लिए धन व्यय किया है। भगवान् ने जल, मिट्टी, वायु, अग्नि तथा आकाश की रचना की है और कोई भी इनका उपयोग करके वेतन प्राप्त कर सकता है। (*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*)। किन्तु कोई स्वामित्व नहीं जता सकता। यह पूर्ण साम्यवाद है। बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने की हमारी प्रवृत्ति का उपयोग केवल बड़े एवं कीमती मन्दिरों के बनवाने में होना चाहिए जिनमें भगवान् का अर्चाविग्रह स्थापित किया जाये। तब भवन बनवाने की हमारी इच्छा पूरी हो जाएगी।

चूँकि सारी सम्पत्ति भगवान् की है—अतएव प्रत्येक वस्तु भगवान् को अर्पित की जानी चाहिए और हमें मात्र प्रसाद ग्रहण करना चाहिए (*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः*)। हमें आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने के लिए आपस में लड़ना नहीं चाहिए, जैसाकि नारद ने महाराज युधिष्ठिर से कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

“मनुष्य को चाहिए कि उतनी ही सम्पत्ति के स्वामित्व का दावा करे जितनी शरीर-निर्वाह के लिए पर्याप्त है, किन्तु जो इससे अधिक के स्वामित्व की इच्छा करता है, वह चोर है और प्रकृति के नियमों के द्वारा दण्डित होने योग्य है।” (*भागवत ७.१४.८*)। निस्सन्देह, हमें खाने, सोने, मैथुन करने तथा रक्षा करने की आवश्यकता पड़ती है (*आहारनिद्राभयमैथुन*), किन्तु जब भगवान् ने पक्षियों तथा मधुमक्खियों तक को ये जीवन-आवश्यकताएँ दे रखी हैं, तो फिर वे मनुष्य के लिए क्यों न दें?

आर्थिक विकास की कोई आवश्यकता नहीं है, हरएक वस्तु पहले से दी हुई है। अतएव मनुष्य को यह समझना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु कृष्ण की है और इसी विचार से प्रसाद ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु यदि कोई दूसरों के हिस्से में हस्तक्षेप करता है, तो वह चोर है। हमें आवश्यकता से अधिक कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिए। अतएव यदि भाग्यवश हमें प्रचुर धन प्राप्त हो जाये तो हमें सदैव यह मानना चाहिए कि यह भगवान् का है। कृष्णभावनामृत में हमें पर्याप्त धन मिलता है, लेकिन हमें कभी यह नहीं समझना चाहिए कि यह धन हमारा है। यह तो भगवान् का है और कार्यकर्ताओं अर्थात् भक्तों में समान रूप से वितरित कर दिया जाना चाहिए। किसी भक्त को यह दावा नहीं करना चाहिए कि यह धन या सम्पत्ति उसकी है। यदि कोई यह सोचता है कि इस विराट ब्रह्माण्ड की सम्पत्ति का कोई भी अंश उसका है, तो उसे चोर समझना चाहिए और वह प्रकृति के नियमों द्वारा दण्डनीय है। *दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—कोई न तो प्रकृति की चौकसी से बच सकता है न उससे अपने इरादे छिपा सकता है। यदि मानव समाज नियम के विरुद्ध यह दावा करता है कि इस ब्रह्माण्ड की आंशिक या पूरी सम्पत्ति मनुष्य की है, तो ऐसे समाज को चोरों का समाज होने का शाप मिलेगा और उसे प्रकृति के नियमों द्वारा दण्डित किया जायेगा।

यं पश्यति न पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; पश्यति—जीव देखता है; न—नहीं; पश्यन्तम्—सदैव देखते हुए; चक्षुः—आँख; यस्य—जिसकी; न—कभी नहीं; रिष्यति—कम होती है; तम्—उसको; भूत-निलयम्—सारे जीवों का मूल स्रोत; देवम्—भगवान् को; सुपर्णम्—जो मित्र के रूप में जीव के साथ-साथ रहता है; उपधावत—हर एक को पूजना चाहिए।

यद्यपि भगवान् विश्व के कार्यकलापों को निरन्तर देखते रहते हैं, किन्तु उन्हें कोई नहीं देख पाता। फिर भी किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि उन्हें कोई नहीं देखता अतएव वे भी उसे नहीं देखते। स्मरण रहे कि उनकी देखने की शक्ति में कभी ह्रास नहीं आता अतएव प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि उन परमात्मा की पूजा करे जो प्रत्येक जीव के साथ मित्र रूप में सदैव रहते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण की स्तुति करते हुए पाण्डवों की माता श्रीमती कुन्ती देवी ने कहा—*अलक्ष्यं सर्वभूतानाम् अन्तर्बहिरवस्थितम्*—हे कृष्ण! आप हरएक के अन्दर तथा बाहर निवास करते हैं, फिर

भी बुद्धिहीन बद्धजीव आपको देख नहीं पाता। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि ज्ञान-चक्षुओं के द्वारा भगवान् को देखा जा सकता है। इन ज्ञान-चक्षुओं को खोलने वाले को गुरु कहते हैं। अतएव हम निम्नलिखित श्लोक से गुरु की प्रार्थना करते हैं—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

“मैं अपने गुरु को सादर नमस्कर करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के दीप से मेरी उन आँखों को खोल दिया है, जो अज्ञान के अंधकार से अन्धी हो गई थीं” (*गौतमीय तन्त्र*)। गुरु का कार्य शिष्य की ज्ञानरूपी आँखों को खोलना है। जब शिष्य अज्ञान से जगकर ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह भगवान् को सर्वत्र देख सकता है क्योंकि भगवान् वास्तव में सर्वत्र हैं। *अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*। भगवान् इस ब्रह्माण्ड के भीतर, समस्त जीवों के हृदयों के भीतर, यहाँ तक कि परमाणु के भीतर भी, निवास करते हैं। चूँकि हममें पूर्णज्ञान का अभाव है अतएव हम ईश्वर को देख नहीं सकते, किन्तु थोड़े से सोच-विचार से हम ईश्वर को सर्वत्र देख सकते हैं। इसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। थोड़े से सोच-विचार से अधम से अधम व्यक्ति भी ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति कर सकता है। यदि हम इस पर विचार करें कि यह विशाल सागर किसकी सम्पत्ति है, यह विशाल भूखण्ड किसकी सम्पत्ति है, आकाश किस तरह टिका है, आकाश में किस तरह लाखों तारे तथा ग्रह टिके हुए हैं, इस ब्रह्माण्ड को किसने बनाया और यह किसकी सम्पत्ति है, तो हम निश्चित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि सभी वस्तुओं का कोई स्वामी है। जब हम किसी भूखण्ड पर व्यक्तिगत रूप से या अपने परिवार तथा राष्ट्र के रूप में स्वामित्व का दावा करते हैं, तो हमें यह भी विचार करना चाहिए कि आखिर हम उसके स्वामी किस तरह बने? यह भूखण्ड हमारे जन्म के पूर्व भी वहीं था। तो फिर यह हमारी सम्पत्ति कैसे बना? ऐसा विचार-विमर्श हमें यह समझने में सहायक होगा कि हर वस्तु का एक परम स्वामी अर्थात् भगवान् होता है।

परमेश्वर सदा जाग्रत रहता है। बद्धावस्था में हम वस्तुओं को भूल जाते हैं क्योंकि हमारे शरीर बदलते रहते हैं, किन्तु क्योंकि भगवान् का शरीर नहीं बदलता अतएव वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को स्मरण रखते हैं। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (४.१) में कहा है— *इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्—*

मैंने कम से कम ४ करोड़ वर्ष पूर्व सूर्यदेव से यह ईश-विज्ञान— *भगवद्गीता*—कहा था। जब अर्जुन ने कृष्ण से पूछा कि वे इतने पहले घटी घटनाओं को किस प्रकार स्मरण रख सके तो भगवान् ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! उस समय तुम भी उपस्थित थे। चूँकि अर्जुन कृष्ण का सखा है अतएव जहाँ-जहाँ कृष्ण जाते हैं, वहाँ-वहाँ अर्जुन भी जाता है। लेकिन अन्तर यही है कि कृष्ण हर बात को स्मरण रखते हैं जबकि अर्जुन जैसा जीव परमेश्वर का सूक्ष्मकण होने के कारण भूल जाता है। अतएव यह कहा गया है कि भगवान् की चौकसी में कभी कमी नहीं आती। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भी हुई है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनम् च*—परमात्मा रूप में भगवान् सारे जीवों के हृदयों में सदैव निवास करते हैं और उन्हीं से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती हैं। इस श्लोक में *सुपर्णम्* शब्द से इसी का संकेत मिलता है, जिसका अर्थ है 'मित्र'। अतएव *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (४.६) में कहा गया है—*द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते*—एक ही वृक्ष पर दो पक्षी मित्रों के रूप में बैठे हैं। एक पक्षी वृक्ष के फल खा रहा है और दूसरा केवल देखता है। यह देखने वाला पक्षी खाने वाले पक्षी के मित्र रूप में सदैव उपस्थित रहता है और उसे उन वस्तुओं का स्मरण दिलाता रहता है, जो वह करना चाहता है। इस प्रकार यदि हम दैनिक मामलों में भगवान् पर विचार करें तो हम उन्हें देख सकते हैं या कम से कम उनकी उपस्थिति की अनुभूति सर्वत्र कर सकते हैं।

चक्षुर्यस्य न रिष्यति शब्दों का भावार्थ यह है कि यद्यपि हम उन्हें देख नहीं सकते, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे हमें नहीं देख सकते। न ही जब विराट विश्व का संहार होता है, तो वे मरते हैं। इस प्रसंग में उदाहरण दिया जाता है कि जब सूर्य रहता है, तो सूर्यप्रकाश रहता है। किन्तु जब सूर्य नहीं रहता या हम सूर्य को नहीं देख सकते तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि सूर्य विनष्ट हो गया। सूर्य फिर भी रहता है, किन्तु हम उसे देख नहीं सकते। इसी प्रकार यद्यपि हम अपने वर्तमान अंधकार में या ज्ञान के अभाव में भगवान् को देख नहीं सकते तो भी वे हमारे कार्यकलापों को देखते रहते हैं और सर्वदा उपस्थित रहते हैं। वे परमात्मा के रूप में साक्षी तथा उपदेशक (*उपद्रष्टा* तथा *अनुमन्ता*) हैं। अतएव गुरु के उपदेशों का पालन करते हुए एवं प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन करते हुए हम यह समझ सकते हैं कि ईश्वर हमारे समक्ष उपस्थित हैं और हर वस्तु को देख रहे हैं यद्यपि उन्हें देखने के लिए हमारे पास आँखें नहीं हैं।

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ।
विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तद्वत् महत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; यस्य—जिसका (भगवान् का); आदि—प्रारम्भ; अन्तौ—अन्त; मध्यम्—मध्य; च—भी; स्वः—अपना; परः—पराया; न—न तो; अन्तरम्—भीतर; बहिः—बाहर; विश्वस्य—सम्पूर्ण विश्व का; अमूनि—ऐसा विचार; यत्—जिसका रूप; यस्मात्—उससे, जो हर वस्तु का कारण है; विश्वम्—समग्र ब्रह्माण्ड; च—तथा; तत्—वे सब; ऋतम्—सत्य; महत्—अत्यन्त महान्।

भगवान् का न तो आदि है, न अन्त और न मध्य। न ही वे किसी व्यक्ति विशेष या राष्ट्र के हैं। उनका न भीतर है न बाहर। इस जगत में दिखने वाले सारे द्वन्द्व—यथा आदि तथा अन्त, मेरा और उनका—उस परम पुरुष के व्यक्तित्व में अनुपस्थित हैं। यह ब्रह्माण्ड जो उनसे उद्भूत होता है उनका एक दूसरा स्वरूप है। अतएव भगवान् परम सत्य हैं और उनकी महानता पूर्ण है।

तात्पर्य : ब्रह्मसंहिता (५.१) में भगवान् कृष्ण का वर्णन मिलता है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं।” भगवान् के अस्तित्व का कोई कारण नहीं है क्योंकि वे सभी वस्तुओं के कारण हैं। वे प्रत्येक वस्तु में रहते हैं (मया ततमिदं सर्वम्), उनका विस्तार सभी वस्तुओं में है, किन्तु वे प्रत्येक वस्तु नहीं हैं। वे अचिन्त्य-भेदाभेद हैं अर्थात् एकसाथ एक तथा भिन्न हैं। इसी की व्याख्या इस श्लोक में हुई है। भौतिक दशा में आदि, मध्य तथा अन्त की धारणा होती है, लेकिन भगवान् में ऐसा कुछ नहीं होता। उनका ब्रह्माण्डीय स्वरूप वही विराट रूप है, जो भगवद्गीता में अर्जुन को प्रदर्शित किया गया था। अतएव वे सर्वत्र तथा सदैव विद्यमान रहने के कारण परम सत्य तथा महानतम हैं। उनकी महानता पूर्ण है। ईश्वर महान् हैं, किन्तु वे किस तरह महान् हैं इसकी व्याख्या यहाँ की गई है।

स विश्वकायः पुरुहूतईशः

सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।

धत्तेऽस्य जन्माद्यजात्मशक्त्या

तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः— भगवान्; विश्व-कायः— ब्रह्माण्ड का समग्र रूप (समग्र ब्रह्माण्ड भगवान् का बाह्य शरीर है); पुरु-हूतः— अनेक नामों से ज्ञेय; ईशः— परम नियन्ता; सत्यः— परम सत्य; स्वयम्— साक्षात्; ज्योतिः— स्वतः तेजवान्; अजः— अजन्मा, अनादि; पुराणः— सबसे प्राचीन; धत्ते— सम्पन्न करता है; अस्य— इस ब्रह्माण्ड का; जन्म-आदि— सृष्टि, पालन तथा संहार; अजया— अपनी बहिरंगा शक्ति से; आत्म-शक्त्या— अपनी निजी शक्ति से; ताम्— उस बहिरंगा शक्ति को; विद्यया— अपनी आध्यात्मिक शक्ति से; उदस्य— त्यागकर; निरीहः— निष्काम या निष्क्रिय; आस्ते— रह रहा है (भौतिक शक्ति का स्पर्श किये बिना)।

यह समग्र विश्व परम सत्य भगवान् का शरीर है जिनके लाखों नाम हैं और अनन्त शक्तियाँ हैं। वे आत्मतेजस्वी, अजन्मा तथा परिवर्तनहीन हैं। वे प्रत्येक वस्तु के आदि हैं, किन्तु स्वयं उनका कोई आदि नहीं है। चूँकि उन्होंने अपनी बहिरंगा शक्ति से इस विराट रूप की सृष्टि की है अतएव यह उनके द्वारा उत्पन्न, पालित तथा ध्वंसित प्रतीत होता है। फिर भी वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में निष्क्रिय रहते हैं और भौतिक शक्ति के कार्यकलाप उनका स्पर्श तक नहीं कर पाते।

तात्पर्य : श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में कहा है— नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिः— भगवान् के अनेक नाम हैं, जो परम पुरुष से अभिन्न हैं। यही आध्यात्मिक अस्तित्व है। भगवान् के नामों से युक्त हरे कृष्ण महामन्त्र के जप से हमें ज्ञात होता है कि नाम में व्यक्ति की सारी शक्तियाँ रहती हैं। भगवान् के कार्यकलाप अनेक हैं और इन्हीं के अनुसार उनके अनेक नाम हैं। वे माता यशोदा के और माता देवकी के भी पुत्र रूप में प्रकट हुए, अतएव उन्हें देवकीनन्दन तथा यशोदानन्दन कहा जाता है। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते— भगवान् की शक्तियाँ अनेक हैं, अतएव वे नाना प्रकार से कर्म करते हैं। फिर भी उनका एक विशेष नाम है। शास्त्र संस्तुति करते हैं कि हम किन नामों का कीर्तन करें— यथा हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। ऐसा नहीं है कि हमें कोई नाम ढूँढना पड़े या बनाना पड़े। प्रत्युत हमें उनके पवित्र नाम के कीर्तन के लिए सन्तों तथा शास्त्रों का अनुगमन करना चाहिए।

यद्यपि भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाँ दोनों भगवान् की होती हैं, किन्तु जब तक हम भौतिक शक्ति में रहते हैं तब तक भगवान् को समझ पाना असम्भव है। किन्तु जब हम आध्यात्मिक शक्ति पर आते हैं, तो उन्हें जानना अत्यन्त सरल हो जाता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत (१.७.२३) में कहा गया है— मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि। यद्यपि बहिरंगा शक्ति भगवान् की होती है, किन्तु बहिरंगा शक्ति में रहकर (मम माया दुरत्यया) भगवान् को समझ पाना मनुष्य के लिए अत्यन्त

कठिन है। किन्तु आध्यात्मिक शक्ति के प्राप्त होते ही उन्हें समझा जा सकता है। इसीलिए *भगवद्गीता* (१८.५५) में कहा गया है—*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*—जो वास्तव में भगवान् को जानना चाहता है उसे भक्ति पद या कृष्णभावनामृत ग्रहण करना होगा। इस भक्ति में विविध क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्*) और भगवान् को समझने के लिए मनुष्य को यह भक्तिमार्ग ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि विश्व के लोग ईश्वर को भूल चुके हैं, और यह कहें कि ईश्वर मर चुका है, किन्तु यह सच नहीं है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ग्रहण करने पर मनुष्य ईश्वर को समझ सकता है और इस तरह सुखी बन सकता है।

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ।

ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; अग्रे—प्रारम्भ में; ऋषयः—सारे विद्वान् ऋषियों या सन्त पुरुषों ने; कर्माणि—सकाम कर्म; ईहन्ते—करते हैं; अकर्म—कर्मफल से मुक्ति; हेतवे—के लिए; ईहमानः—ऐसे कार्यों में लगे रहकर; हि—निस्सन्देह; पुरुषः—पुरुष; प्रायः—सदा ही; अनीहाम्—कर्म से मुक्ति; प्रपद्यते—प्राप्त करता है।

अतएव लोगों को कर्मों की ऐसी अवस्था तक पहुँचने में समर्थ बनाने के लिए जो सकाम फलों से दूषित नहीं होते, बड़े-बड़े साधु पुरुष सर्वप्रथम लोगों को सकाम कर्म में लगाते हैं क्योंकि जब तक कोई शास्त्रानुमोदित कर्मों को सम्पन्न करना आरम्भ नहीं करता तब तक वह मुक्ति की अवस्था को या कर्मफल न उत्पन्न करने वाले कार्यों की अवस्था को प्राप्त नहीं होता।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (३.९) में भगवान् कृष्ण उपदेश देते हैं—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के लिए यज्ञ रूप में किया गया कर्म करणीय है, अन्यथा कर्म मनुष्य को इस संसार से बाँध देता है। सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में सुखी होने के लिए कठिन श्रम करने के लिए आकृष्ट होता है, किन्तु यद्यपि सारे विश्व में सुख के लिए ही विविध कार्यकलाप चल रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसे सकाम कर्मों से समस्याएँ ही उत्पन्न होती हैं। इसीलिए सलाह दी गई है कि कर्मठ लोग कृष्णभावनामृत के कार्यों में लगे, जिन्हें *यज्ञ* कहा जाता है क्योंकि ऐसा करने से वे लोग क्रमशः भक्तिपद को प्राप्त हो सकेंगे। यज्ञ का अर्थ है भगवान् विष्णु जो *यज्ञ-पुरुष* हैं—यज्ञों के भोक्ता हैं (*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*)। वास्तव में, भगवान् ही भोक्ता हैं, इसलिए यदि हम उनको तुष्ट

करने के लिए अपने कर्म करना प्रारम्भ करें तो हम धीरे-धीरे भौतिक कार्यों में रूचि खो देंगे।

सूत गोस्वामी ने नैमिषारण्य के मुनियों की महासभा में घोषित किया था—

अतःपुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ।

स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥

“हे द्विजश्रेष्ठ! यदि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अपने नियत कार्य को करते रहने से कोई सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, तो वह भगवान् हरि का तोषण है।” (*भागवत* १.२.१३)। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी होने के अनुसार कर्म करना चाहिए। हर एक व्यक्ति को इस प्रकार कर्म करते हुए सिद्धि की ओर अग्रसर होना चाहिए जिससे कृष्ण प्रसन्न हो जाएँ (*संसिद्धिर्हरितोषणम्*)। कोई अकर्मण्य बनकर कृष्ण को प्रसन्न नहीं कर सकता। उसे भगवान् को प्रसन्न करने के लिए गुरु के आदेशानुसार कर्म करना चाहिए। तभी वह धीरे-धीरे शुद्ध भक्ति की अवस्था तक पहुँचेगा। जैसी कि *श्रीमद्भागवत* (१.५.१२) में पुष्टि हुई है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव वर्जितं

न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।

“समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त होने पर भी आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान अच्छा नहीं लगता यदि वह अच्युत (ईश्वर) की धारणा से विहीन हो।” ज्ञानी कहते हैं कि मनुष्य कुछ न करता हुआ एकमात्र ब्रह्म का ध्यान करते हुए नैष्कर्म्य को ग्रहण करे, किन्तु यह तब तक असम्भव है जब तक उसे परब्रह्म कृष्ण की अनुभूति न हो ले। यदि कृष्णभावनामृत न हो तो कोई भी कर्म, चाहे परोपकारी हो, राजनीतिक या सामाजिक, *कर्मबन्धन* को ही उत्पन्न करता है।

जब तक मनुष्य *कर्मबन्धन* में फँसा रहता है तब तक उसे विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करने पड़ते हैं, जो मनुष्य जीवन की सुविधा को नष्ट कर देते हैं। इसीलिए *भगवद्गीता* (६.३) में *कर्मयोग* की संस्तुति की गई है—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

“जो योग पद्धति में नवदीक्षित है उसके लिए कर्म साधन है, किन्तु जिसने योग की प्राप्ति कर ली है उसके लिए सभी भौतिक कर्मों से विराम लेना ही साधन कहलाता है।” फिर भी :

कर्मैन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

“जो इन्द्रियों को तथा कर्मैन्द्रियों को रोक लेता है, किन्तु जिसका मन इन्द्रिय-विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह निश्चय ही अपने को धोखा देता है और वञ्चक कहलाता है।” (भगवद्गीता ३.६)। मनुष्य को चाहिए कि पूर्णतः कृष्णभावनाभावित होने के लिए वह कृष्ण के लिए गंभीर रूप से कर्म करे। उसे हरिदास ठाकुर जैसे महापुरुषों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने ऐसे अनुकरण की निन्दा करते हुए कहा है—

दुष्ट मन! तुमि किसेर वैष्णव?

प्रतिष्ठार तरे, निर्जनेर घरे,

तव हरिनाम केवल कैतव।

“मेरे मन! तुम कैसे भक्त हो? तुम केवल सस्ती प्रतिष्ठा के लिए निर्जन स्थान में बैठ जाते हो और हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने का दिखावा करते हो, किन्तु यह सब ठगी है।” हाल ही में मायापुर में एक अफ्रीकी भक्त ने हरिदास ठाकुर का अनुकरण करना चाहा, किन्तु पन्द्रह दिन के बाद वह अशान्त हो उठा और भाग गया। एकाएक हरिदास ठाकुर का अनुकरण करने का प्रयत्न मत करो। तुम कृष्णभावनाभावित कर्मों में लगे। इससे तुम धीरे-धीरे मुक्ति की अवस्था को प्राप्त हो सकोगे। (मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः)।

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विसज्जते ।

आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ईहते—सृजन, पालन तथा संहार के कार्यों में लगता है; भगवान्—भगवान् कृष्ण; ईशः—परम नियन्ता; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; तत्र—ऐसे कार्यों में; विसज्जते—फँस जाता है; आत्म-लाभेन—अपने लाभ के कारण; पूर्ण-अर्थः—आत्मतुष्टि; न—नहीं; अवसीदन्ति—निराश होते हैं; ये—जो लोग; अनु—अनुसरण करते हैं; तम्—भगवान् को।

भगवान् अपने ही लाभ से ऐश्वर्यपूर्ण हैं, फिर भी वे संसार के स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार से कर्म करने पर भी वे कभी बन्धन में नहीं पड़ते। अतएव जो

भक्तगण उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन करते हैं, वे भी कभी बन्धन में नहीं पड़ते।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के यज्ञ रूप में किया गया कर्म करणीय है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस संसार से बाँध देता है। यदि हम कृष्णभावनामृत में रहकर कर्म नहीं करते तो हम बन्धन में पड़ेंगे जिस तरह कि रेशम का कीड़ा अपने ही कृमिकोश में फँस जाता है। भगवान् कृष्ण हमें यह शिक्षा देने के लिए प्रकट होते हैं कि हम किस तरह कर्म करें जिससे जगत में हम फँसे नहीं। हमारी असली समस्या यह है कि हम भौतिकतावादी कार्यकलापों में फँसे हैं और हमारे बद्ध होने से हमारा संघर्ष एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करने के दण्ड के रूप में चलता रहता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.७) में भगवान् कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत में सारे जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों द्वारा कठिन संघर्ष में लगे हैं।” सारे जीव वास्तव में सूक्ष्म रूप हैं, जो भगवान् के अंश हैं। भगवान् हर वस्तु में पूर्ण हैं और भगवान् के छोटे कण भी मूलतः उन्हीं के समान गुणमय हैं, किन्तु अपने सूक्ष्म अस्तित्व के कारण वे भौतिक आकर्षण से दूषित होकर बद्ध हो जाते हैं। अतएव हमें भगवान् के आदेशों का पालन करना चाहिए। तब हमें भी कृष्ण की भाँति किसी भी बात पर पश्चाताप नहीं करना होगा। (*नावसीदन्ति येऽनु तम्*) क्योंकि वे सृजन, पालन तथा संहार जैसे अपने भौतिक कार्यों से कभी बँधते नहीं। *भगवद्गीता* में कृष्ण स्वयं उपदेश देते हैं और जो भी इनका पालन करता है, वह मुक्त हो जाता है।

कृष्ण के उपदेशों का पालन तभी सम्भव है जब कोई भक्त हो क्योंकि कृष्ण यह आदेश देते हैं कि हे मनुष्य! तुम भक्त बनो। *मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—“सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो।” (*भगवद्गीता* १८.६५)। सदैव कृष्ण के चिन्तन का अर्थ होता है हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन, किन्तु जब तक कोई दीक्षित भक्त न बन ले, यह सम्भव नहीं। ज्योंही कोई भक्त बन जाता है, वह अर्चाविग्रह की पूजा में लग जाता है (*मद्याजी*)। भक्त

का कार्य है भगवान् तथा गुरु को सदा नमस्कार करना। भक्ति पद तक उठने का यह मान्य सिद्धान्त है। इस पद के प्राप्त होते ही मनुष्य भगवान् को धीरे-धीरे समझने लगता है और कृष्ण को समझ लेने मात्र से ही वह भवबन्धन से छूट जाता है।

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं
निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नृञ्छिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं
प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसी भगवान् को; ईहमानम्—हमारे लाभ के लिए कर्म करने वाले; निरहङ्कृतम्—जो बन्धन अथवा लाभ की इच्छा से रहित है; बुधम्—ज्ञानवान् को; निराशिषम्—अपने कर्मफल को भोगने की इच्छा न रखने वाले को; पूर्णम्—जो पूर्ण है अतएव जिसे इच्छा पूर्ति की आवश्यकता नहीं है; अनन्य—अन्यों के द्वारा; चोदितम्—प्रेरित, प्रोत्साहित; नृन्—सारा मानव समाज; शिक्षयन्तम्—शिक्षा देने के लिए (जीव के असली पथ की); निज-वर्त्म—अपनी निजी जीवन शैली; संस्थितम्—प्रतिष्ठित करने के लिए (विचलित हुए बिना); प्रभुम्—भगवान् से; प्रपद्ये—प्रार्थना करता हूँ; अखिल-धर्म-भावनम्—जो मनुष्यों के समस्त धार्मिक सिद्धान्तों अथवा वृत्तिपरक कर्मों के स्वामी हैं।

भगवान् कृष्ण एक सामान्य व्यक्ति की भाँति कर्म करते हैं, फिर भी वे कर्मफल भोगने की इच्छा नहीं रखते। वे ज्ञान से पूर्ण, भौतिक इच्छाओं तथा विक्षेपों से मुक्त एवं पूर्णतः स्वतंत्र हैं। वे मानव समाज के परम शिक्षक के रूप में अपनी ही कर्मशैली का उपदेश देते हैं और इस प्रकार धर्म के असली मार्ग का उद्घाटन करते हैं। मैं हर व्यक्ति से प्रार्थना करता हूँ कि वह उनका अनुसरण करे।

तात्पर्य : हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है। मानव समाज से हमारा मात्र यही अनुरोध है कि वे भगवद्गीता के उपदेशकर्ता के पदचिह्नों पर चलें। भगवद्गीता यथारूप के उपदेशों का पालन करने से तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का व्यवस्थापक हर एक को शिक्षा दे रहा है कि किस प्रकार भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण किया जाय। इस संसार में राजतंत्र या अच्छी सरकार के लिए नेता की आवश्यकता होती है। भगवान् रामचन्द्र ने अपने व्यावहारिक उदाहरण द्वारा यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार सारे मानव समाज के लाभ के लिए जिया जाये। उन्होंने रावण जैसे असुरों के साथ युद्ध किया, उन्होंने अपने पिता के आदेश का पालन किया और वे माता सीता के पत्नीव्रत पति बने रहे। अतएव आदर्श राजा के रूप में भगवान् रामचन्द्र के कार्यों की कोई तुलना नहीं

है। निस्सन्देह, लोग अब भी रामराज्य की लालसा करते हैं। इसी प्रकार कृष्ण ने भगवान् होते हुए भी अपने शिष्य तथा भक्त अर्जुन को शिक्षा दी कि किस तरह जीवन जिया जाये जिससे अन्ततः भगवद्धाम लौटा जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। *भगवद्गीता* में सभी प्रकार की शिक्षाएँ मिलती हैं—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक। मनुष्य को उनका दृढ़तापूर्वक पालन भर करना है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में शुद्ध भक्त की भूमिका मात्र अदा करने के लिए भी जन्म लेते हैं। इस तरह भगवान् हमारे जीवन को सफल बनाने के लिए हमें अनेक प्रकार से शिक्षा देते हैं और स्वायंभुव मनु हम सबों से अनुरोध कर रहे हैं कि हम उनका अनुसरण करें।

स्वायंभुव मनु मानव जाति के अग्रणी (नेता) हैं और उन्होंने मानव समाज के मार्गदर्शन हेतु *मनुसंहिता* नामक ग्रंथ प्रदान किया है। इसमें वे हमें भगवान् के विभिन्न अवतारों के अनुसार चलने का निर्देश देते हैं। ये अवतार वैदिक साहित्य में वर्णित हैं और जयदेव गोस्वामी ने दस महत्त्वपूर्ण अवतारों का संक्षेप में वर्णन किया है—*केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे, केशव धृतनरहरि-रूप जय जगदीश हरे, केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे, आदि आदि*। स्वायंभुव मनु हमें ईश्वर के अवतारों के उपदेशों का, विशेषतया *भगवद्गीता यथारूप* के उपदेशों का, पालन करने की शिक्षा देते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट *भक्तिमार्ग* की प्रशंसा करते हुए सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का चित्रण इस प्रकार किया है—

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥

“मैं भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता हूँ जो हमें असली ज्ञान, अपनी भक्ति तथा कृष्णचेतना में प्रोत्साहन न देने वाली प्रत्येक वस्तु से विरक्ति का उपदेश देने के लिए चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। वे इसलिए अवतरित हुए हैं क्योंकि वे दिव्य कृपा के सागर हैं। मैं उनके चरणकमलों में शरण लेता हूँ।” (*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ६.७४*)। इस कलिकाल में लोग भगवान् के उपदेशों का पालन नहीं कर सकते; अतएव भगवान् स्वयं ही लोगों को कृष्णभावनाभावित होने का पाठ पढ़ाने के लिए श्रीकृष्णचैतन्य की भूमिका निभाते हैं। वे हर एक से कहते हैं कि मेरा अनुसरण करो और

कलियुग की पतितात्माओं के उद्धार के लिए गुरु बनो।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हजा तार' ऐइ देश ॥

“हर व्यक्ति को उपदेश दो कि वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करे। इस तरह गुरु बनकर इस भूमि के प्रत्येक व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयास करो।” (चैतन्य चरितामृत मध्य ७.१२८)। भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु का एक ही उद्देश्य था—मानव समाज को यह सिखाना कि किस प्रकार भगवान् के उपदेशों का पालन करके सुखी हुआ जाये।

श्रीशुक उवाच

इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ।

दृष्ट्वासुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; मन्त्र-उपनिषदम्—वैदिक मंत्र (स्वायंभुव मनु द्वारा उच्चारित); व्याहरन्तम्—सिखाये गये या उच्चारित; समाहितम्—मन को केन्द्रित किया (भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध हुए बिना); दृष्ट्वा—देखकर; असुराः—असुरगण; यातुधानाः—राक्षसगण; जग्धुम्—निगल जाना चाहा; अभ्यद्रवन्—तेजी से दौते हुए; क्षुधा—अपनी भूख को शान्त करने के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार स्वायंभुव मनु उपनिषदों के मंत्रों की जयध्वनि करते हुए समाधिस्थ हो गये। उन्हें देखकर राक्षसों तथा असुरगण ने अत्यन्त भूखे होने के कारण उन्हें निगल जाना चाहा। अतएव वे उनके पीछे द्रुतगति से दौने लगे।

तांस्तथावसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ।

यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाशासत्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तान्—असुरों तथा राक्षसों को; तथा—इस प्रकार; अवसितान्—जो स्वायंभुव मनु को निगलने के लिए कृतसंकल्प थे; वीक्ष्य—देखकर; यज्ञः—भगवान् विष्णु, जो यज्ञ कहलाते हैं; सर्व-गतः—हर एक के हृदय में स्थित; हरिः—भगवान्; यामैः—याम नामक अपने पुत्रों के साथ; परिवृतः—घिरा हुआ; देवैः—देवताओं से; हत्वा—(असुरों को) मारकर; अशासत्—(इन्द्रपद ग्रहण करके) शासन चलाया; त्रि-विष्टपम्—स्वर्ग-लोकों का।

प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् विष्णु यज्ञपति के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने देखा कि राक्षस तथा असुर स्वायंभुव मनु को निगल जाने वाले हैं। इस प्रकार याम नामक अपने पुत्रों तथा अन्य सभी देवताओं को साथ लेकर भगवान् ने उन असुरों तथा राक्षसों को मार डाला।

तब उन्होंने इन्द्र का पद ग्रहण किया और स्वर्ग लोक पर शासन करने लगे।

तात्पर्य : देवताओं के विभिन्न नाम यथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादि व्यक्तिगत नाम नहीं हैं। वे विभिन्न पदों के नाम हैं। इस प्रसंग में हमें पता लगता है कि इन पदों को ग्रहण करने योग्य उपयुक्त व्यक्तियों के न होने पर भगवान् विष्णु कभी ब्रह्मा बनते हैं, तो कभी इन्द्र।

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुर्गनेः सुतोऽभवत् ।

द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स्वारोचिषः—स्वारोचिष; द्वितीयः—दूसरा; तु—निस्सन्देह; मनुः—मनु; अग्नेः—अग्नि का; सुतः—पुत्र; अभवत्—बना; द्युमत्—द्युमत्; सुषेण—सुषेण; रोचिष्मत्—रोचिष्मत्; प्रमुखाः—इत्यादि; तस्य—उसके (स्वारोचिष के); च—भी; आत्मजाः—पुत्र।

अग्नि का पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु बना। उसके अनेक पुत्रों में द्युमत्, सुषेण तथा रोचिष्मत् प्रमुख थे।

तात्पर्य :

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।

ऋषयोऽंशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥

भगवान् के अनेक अवतार हैं। मनु, मनुपुत्राः (मनु के पुत्र) स्वर्ग लोकों का राजा तथा सप्तर्षि—ये सभी भगवान् के अंशावतार हैं। स्वयं मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद, दक्ष द्वारा उत्पन्न देवता तथा मरीचि जैसे ऋषि—ये सभी स्वायंभुव मनु के राज्यकाल में भगवान् के अंशावतार थे। उस काल में भगवान् के अवतार यज्ञ ने स्वर्गलोकों के शासन का राज्यभार सँभाला। अगला मनु स्वारोचिष था। अगले ग्यारह श्लोकों में मनुओं, ऋषियों तथा देवताओं का और विस्तृत वर्णन हुआ है।

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ।

ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—इस मन्वन्तर में; इन्द्रः—इन्द्र; रोचनः—रोचन, यज्ञ का पुत्र; तु—लेकिन; आसीत्—हुआ; देवाः—देवता; च—भी; तुषित-आदयः—तुषित तथा अन्य; ऊर्ज—ऊर्ज; स्तम्भ—स्तम्भ; आदयः—तथा अन्य; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; ब्रह्मवादिनः—सभी निष्ठावान् भक्त।

स्वारोचिष के शासनकाल में इन्द्र का पद यज्ञपुत्र रोचन ने ग्रहण किया। तुषित तथा अन्य

लोग प्रधान देवता बने और ऊर्ज, स्तम्भ इत्यादि सप्तर्षि हुए। ये सभी भगवान् के निष्ठावान् भक्त थे।

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ऋषेः—ऋषि का; तु—निस्सन्देह; वेदशिरसः—वेदशिरा; तुषिता—तुषिता; नाम—नामक; पत्नी—पत्नी ने; अभूत्—उत्पन्न किया; तस्याम्—अपने (गर्भ) से; जज्ञे—जन्म लिया; ततः—तत्पश्चात्; देवः—भगवान्; विभुः—विभु; इति—इस प्रकार; अभिविश्रुतः—विख्यात।

वेदशिरा अत्यन्त विख्यात ऋषि थे। उनकी पत्नी तुषिता के गर्भ से विभु नामक अवतार ने जन्म लिया।

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ।
अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अष्टाशीति—अट्ठासी; सहस्राणि—हजार; मुनयः—साधु पुरुष; ये—वे जो; धृत-व्रताः—व्रतधारी; अन्वशिक्षन्—शिक्षाएँ ग्रहण कीं; व्रतम्—व्रत; तस्य—उसका (विभु का); कौमार—अविवाहित; ब्रह्मचारिणः—तथा ब्रह्मचारी अवस्था में रहने वाला।

विभु ब्रह्मचारी बने रहे और जीवन पर्यन्त अविवाहित रहे। उनसे अट्ठासी हजार अन्य मुनियों ने आत्मनिग्रह, तपस्या तथा अन्य आचार सम्बन्धी शिक्षाएँ ग्रहण कीं।

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तृतीयः—तीसरा; उत्तमः—उत्तम; नाम—नामक; प्रियव्रत—राजा प्रियव्रत का; सुतः—पुत्र; मनुः—मनु बना; पवनः—पवन; सृञ्जयः—सृञ्जय; यज्ञहोत्र-आद्याः—यज्ञहोत्र इत्यादि; तत्-सुताः—उत्तम के पुत्र; नृप—हे राजा।

हे राजा! तीसरा मनु राजा प्रियव्रत का पुत्र उत्तम था। इस मनु के पुत्रों में पवन, सृञ्जय तथा यज्ञहोत्र मुख्य थे।

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

वसिष्ठ-तनयाः—वशिष्ठ के पुत्र; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; प्रमद-आदयः—प्रमद इत्यादि; सत्याः—सत्यगण;
वेदश्रुताः—वेदश्रुतगण; भद्राः—भद्रगण; देवाः—देवतागण; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा; तु—लेकिन; सत्यजित्—सत्यजित्।

तीसरे मनु के शासनकाल में वसिष्ठ के प्रमद तथा अन्य पुत्र सप्तर्षि बने। सत्यगण,

वेदश्रुतगण तथा भद्रगण देवता बने और सत्यजित् को स्वर्ग का राजा इन्द्र चुना गया।

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।

सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

धर्मस्य—धर्म के देवता की; सूनृतायाम्—सूनृता नामक पत्नी के गर्भ में; तु—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; पुरुष-उत्तमः—
परमेश्वर; सत्यसेनः—सत्यसेन; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात; जातः—जन्म लिया; सत्यव्रतैः—सत्यव्रतों के; सह—
साथ।

इस मन्वन्तर में भगवान् धर्म की पत्नी सूनृता के गर्भ से प्रकट हुए और सत्यसेन नाम से

विख्यात हुए। वे सत्यव्रत नामक अन्य देवताओं के साथ प्रकट हुए।

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।

भूतद्रुहो भूतगणांश्चावधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (सत्यसेन); अनृत-व्रत—झूठ बोलने का व्रत लेने वाला; दुःशीलान्—दुराचारी; असतः—दुष्ट; यक्ष-राक्षसान्—यक्षों
तथा राक्षसों को; भूत-द्रुहः—अन्य जीवों की उन्नति का सदैव विरोध करने वाले; भूत-गणान्—भूत प्रेतों का; च—भी;
अवधीत्—वध कर दिया; सत्यजित्-सखः—अपने मित्र सत्यजित सहित।

सत्यसेन ने अपने मित्र सत्यजित् सहित जो उस काल के स्वर्ग के राजा इन्द्र थे समस्त झूठे,

अपवित्र तथा दुराचारी यक्षों, राक्षसों तथा भूतप्रेतों का वध कर दिया क्योंकि वे सारे जीवों को
कष्ट पहुँचाते थे।

चतुर्थं उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।

पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

चतुर्थं—चौथा मनु; उत्तम-भ्राता—उत्तम का भाई; मनुः—मनु बना; नाम्ना—नाम से विख्यात; च—भी; तामसः—तामस;
पृथुः—पृथु; ख्यातिः—ख्याति; नरः—नर; केतुः—केतु; इति—इस प्रकार; आद्याः—इत्यादि; दश—दस; तत्-सुताः—तामस
मनु के पुत्र।

तीसरे मनु उत्तम का भाई जो तामस नाम से विख्यात था चौथा मनु बना। तामस के दस पुत्र

थे जिनमें पृथु, ख्याति, नर तथा केतु प्रमुख थे।

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सत्यका:—सत्यकगण; हरयः—हरिगण; वीराः—वीरगण; देवाः—देवगण; त्रिशिखः—त्रिशिख; ईश्वरः—स्वर्ग का राजा;
ज्योतिर्धाम-आदयः—ज्योतिर्धाम इत्यादि; सप्त—सात; ऋषयः—ऋषिगण; तामसे—तामस मनु के राज्यकाल; अन्तरे—में।

तामस मनु के शासन में सत्यकगण, हरिगण तथा वीरगण देवताओं में से थे। स्वर्ग का राजा

इन्द्र त्रिशिख था। सप्तर्षि-धाम के ऋषियों में ज्योतिर्धाम प्रमुख था।

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवतागण; वैधृतयः—वैधृतिगण; नाम—नामक; विधृतेः—विधृति के; तनयाः—पुत्र; नृप—हे राजा; नष्टाः—नष्ट हो
गये थे; कालेन—समय के प्रभाव से; यैः—जिससे; वेदाः—वेद; विधृताः—सुरक्षित थे; स्वेन—अपने; तेजसा—बल से।

हे राजा! तामस मन्वन्तर में विधृति के पुत्र भी जो वैधृति कहलाते थे, देवता बने। चूँकि

कालक्रम से वैदिक स्वत्व विनष्ट हो गया था, अतएव इन देवताओं ने अपने बल से वैदिक स्वत्व
की रक्षा की।

तात्पर्य : तामस मन्वन्तर में दो प्रकार के देवता थे जिनमें से एक वैधृति कहलाते थे। देवताओं का
कार्य वेदों के स्वत्व की रक्षा करना है। देवता शब्द वेदों के स्वत्व को वहन करने वाले का सूचक है,
जबकि राक्षस वे हैं, जो वैदिक स्वत्व का उल्लंघन करते हैं। यदि वेदों का स्वत्व जाता रहता है, तो
समग्र ब्रह्माण्ड अशान्त हो उठता है। अतएव देवताओं के साथ-साथ राजाओं तथा सरकार के सहायकों
का कर्तव्य है कि वे वेदों के स्वत्व को पूरा संरक्षण प्रदान करें; अन्यथा मानव समाज में अशान्ति छा
जायेगी और तब उसमें शान्ति अथवा समृद्धि नहीं रह सकती।

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्रापि—उस काल में; जज्ञे—प्रकट हुआ; भगवान्—भगवान्; हरिण्याम्—हरिणी के गर्भ में; हरिमेधसः—हरिमेधा से उत्पन्न;
हरिः—हरि; इति—इस प्रकार; आहृतः—कहलाया; येन—जिसके द्वारा; गज-इन्द्रः—हाथियों का राजा; मोचितः—छुड़ाया
गया था; ग्रहात्—घड़ियाल के मुख से।

इस मन्वन्तर में भगवान् विष्णु ने भी हरिमेधा की पत्नी हरिणी के गर्भ से जन्म लिया और वे

हरि कहलाये। हरि ने हाथियों के राजा एवं अपने भक्त गजेन्द्र को घड़ियाल के मुख से छुड़ाया।

श्रीराजोवाच

बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।

हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूचत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; बादरायणे—हे बादरायण (व्यासदेव) के पुत्र; एतत्—यह; ते—तुमसे; श्रोतुम् इच्छामहे—सुनने की इच्छा करते हैं; वयम्—हम; हरिः—भगवान् हरिः; यथा—जिस तरह से; गज-पतिम्—हाथियों के राजा को; ग्राह-ग्रस्तम्—घड़ियाल द्वारा आक्रमण किये जाने पर; अमूचत्—छुड़ाया, उद्धार किया।

राजा परीक्षित ने कहा : हे बादरायण प्रभु! हम आपसे विस्तार से यह सुनना चाहते हैं कि घड़ियाल द्वारा आक्रमण किये जाने पर हाथियों के राजा (गजेन्द्र) को हरि ने किस प्रकार छुड़ाया ?

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।

यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तत्-कथासु—उन कथाओं में; महत्—महान्; पुण्यम्—पवित्र; धन्यम्—धन्य; स्वस्त्ययनम्—कल्याणप्रद; शुभम्—शुभ; यत्र—जब भी; यत्र—जहाँ भी; उत्तमश्लोकः—उत्तमश्लोक नाम से प्रसिद्ध; भगवान्—भगवान्; गीयते—गायन किया जाता है; हरिः—भगवान्।

कोई भी साहित्य या कथा जिसमें भगवान् उत्तमश्लोक का वर्णन और उनकी महिमा का गायन किया जाता है, वह निश्चय ही महान्, शुद्ध, धन्य, कल्याणप्रद तथा उत्तम है।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्ण का वर्णन करने मात्र से सारे विश्व में फैल रहा है। हमने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें श्रीचैतन्य-चरितामृत (सत्रह खण्डों में, प्रत्येक चार-चार सौ पृष्ठ का, है), भगवद्गीता तथा भक्तिरसामृतसिन्धु सम्मिलित हैं। हम श्रीमद्भागवत का प्रकाशन साठ खण्डों में कर रहे हैं। जहाँ कहीं भी कोई वक्ता इन पुस्तकों से व्याख्यान देगा तथा श्रोता उसे सुनेंगे, उससे उत्तम तथा शुभ वातावरण उत्पन्न होगा। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को, विशेषतया संन्यासियों को बड़ी सावधानी से कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए। इससे शुभ वातावरण उत्पन्न होगा।

श्रीसूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः

प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।

उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं

मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; परीक्षिता—महाराज परीक्षित के द्वारा; एवम्—इस प्रकार; सः—वह; तु—निस्सन्देह; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी; प्राय-उपविष्टेन—आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले परीक्षितमहाराज ने; कथासु—शब्दों से; चोदितः—प्रोत्साहित होकर; उवाच—कहा; विप्राः—हे बाह्यणो; प्रतिनन्द्य—बधाई देकर; पार्थिवम्—महाराज परीक्षित को; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; मुनीनाम्—मुनियों की; सदसि—सभा में; स्म—निस्सन्देह; शृण्वताम्—सुनने के इच्छुक।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : हे बाह्यणो! जब आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से ऐसा बोलने के लिए प्रार्थना की तो मुनि ने राजा के शब्दों से प्रोत्साहित होकर, राजा का अभिनन्दन किया और वे सुनने के इच्छुक मुनियों की सभा में अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत “ब्रह्माण्ड के प्रशासक मनु” नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।